ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-11*December- 2021
Innovation The Research Concept

सौमनस्य - आधुनिक समय की आवश्यकता और वैदिक संदर्भ

Saumanasya - Need of Modern Times and Vedic Context

Paper Submission: 00/00/2021, Date of Acceptance: 00/00/2021, Date of Publication: 00/00//2021

अंजू सेठ
प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
सत्यवती महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली,भारत

सारांश

वर्तमान समय भौतिकवादी अर्थवादी युग है जहाँ मानव "केवल टका कर्म, टका धर्म" की "प्रतिस्पर्धा दौड़" में अपना सारा जीवन लगा देता है परन्तु कुछ भी उसको प्राप्त नहीं होता। असंतुष्टि, ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा, भय, आशङ्कादि से युक्त होकर विभिन्न आधियों एवं तत्पश्चात् विविध व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है। उसकी समस्याओं की अनवरत शृंखला कभी समाप्त नहीं होती।

उस समय वैदिक अवधारणाएँ सौमनस्य रूपी कवच लेकर उपस्थित होती हैं और परिगाड़ित मानवजाति को संबल प्रदान करती है। तत्कालीन सौमनस्य सम्बन्धी वैदिक अवधारणाओं का वर्तमानयुगीन मानव की तत्कालिक समस्याओं के समाधान में योगदान को पूर्णरूप से स्थापित करना ही प्रस्तुत लेख का प्रमुख उद्देश्य है।

The present time is the materialistic economic age where man spends his whole life in the "competitive race" of "only Taka Karma, Taka Dharma" but he does not get anything. Being filled with dissatisfaction, jealousy, competition, fear, apprehension, etc., it becomes prone to various ailments and after that various diseases. His endless series of problems never ends.

At that time the Vedic concepts are present in the form of gentleness and provide strength to the engulfed mankind. The main objective of the present article is to fully establish the contribution of the Vedic concepts related to the then harmony in the solution of the immediate problems of the present age.

मुख्य शब्दः वेद, वैदिक, सौमनस्य, वर्तमानयुग ।

Keywords: Vedas, Vedic, Soumansya, present age.

प्रस्तावना

भारतभूमि देवस्थली है। हमारी सभ्यता संस्कृति, आचार व्यवहार सभी ईश्वरीय देन है। सभ्यता एवं संस्कृति किसी भी देश की जनजागृति का ही प्रतीक होती है।

वेद हमारी सभ्यता एवं संस्कृति के वे अखण्ड स्तूप है जो सभी आचार व्यवहार एवं संस्कृति सम्बन्धी सभी विशिष्टताओं को समग्रतापूर्वक धारण किए हुए हैं। इस सुदृढ़ वैदिक आधारभूमि पर उत्पन्न विचारधाराएँ, सारतत्त्व एवं प्रग्रतिपथ पर उद्यतः विचार पूर्णतः फलीभूत होते रहे हैं।

हमारी प्राचीन वैदिक संस्कृति सम्पूर्ण विश्व को शिक्षा प्रदान करने के कारण 'आद्या' है - सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा । विश्ववरेण्या वैदिक भारतीय संस्कृति का प्रमुख गुण है सौमनस्य अर्थात् एकता, अखण्डता, अहन्यता।

ईश्वरीय गुणों से युक्त वैदिक संस्कृति "**सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय**" उन महत्त्वपूर्ण तथ्यों को प्रस्तुत करती है जो विश्वकल्याण हेतु आज के समय में भी अत्यन्त उपयोगी है।

सर्वप्रथम सौमनस्य की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए ज्ञात होता है कि सौमनस्य एक ऐसी उत्तम प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह भौतिक एवं सामाजिक तथ्यों से सम्बन्धित होकर एक नवीन मधुर सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित करता है। अपनी वर्तमान परिस्थति एवं वातावरण में अपने स्वयं को समाहित कर लेना ही सौमनस्य है।

मनुष्य, प्रकृति, समाज का परस्पर समन्वय : सौमनस्य ही

वैदिक युग में व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक स्तर पर सौमनस्य द्योतित किया गया है। इस परिप्रेक्ष्य में वैयक्तिक, सामाजिक, वैचारिक, आध्यात्मिक, दैविक, प्राकृतिक, पर्यावरणीय इत्यादि पक्षों पर वर्तमान लेख में विचार प्रस्तुत किया जाएगा।

वैयक्तिक या पारिवारिक सौमनस्य

वैदिक समाज व्यक्ति के हित एवं उद्देश्यों की पूर्ति में बहुत सजग था। व्यक्ति से ही समाज, समाज से देश एवं देश से विश्व का हित सम्पादन होता है।

व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक स्तर पर सौमनस्य का वर्णन वैदिक युग में पगेपगे दृष्टिगत होता है। मनुष्य संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है जिसे सम्बन्ध बनाने एवं निभाने होते है। इस समय वैदिक उपदेश सौमनस्य का उपदेश लेकर पहुँच जाते है।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शातिवान् [i]

एवमेव भाई भाई का स्नेह, बहन बहन का प्यार, रहे कोई भी द्वेष मन में न रखे -

मा भ्राता भ्रातारं दिक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा सम्यंचसव्रताः भूत्वा वाच ददत भ्रदया।[ii]

आज के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति के जीवन में इतनी अधिक व्यग्रता, कामनाएँ, इच्छाओं के प्रति भागना, प्रत्येक दूसरे व्यक्ति का अन्धानुकरण इत्यादि अनेकों समस्याएँ हैं जिनका समाधान संभवतः मानव के प्रयासों से दुर्लभ है। वैदिक शिक्षाएँ इच्छाओं पर नियन्त्रण, आत्मशक्ति का विकास एवं जीवन में संयम द्वारा विविध समस्याओं का हल निकाल लेती है -

''आत्मानं विद्धि'' का उद्घोष करती हुई वैदिक शिक्षा सौमनस्य की भावना भी प्रसार करती है जब वह अवधारणा इन्द्रियमसंयम के रूप में प्रस्तुत होती है यथा -

इमानि यानि पंचेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि हृदि ब्रह्मणा संज्ञितानि।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरएतु नः, जीवेम शरदः शतम् पश्येम शरदः शतम्।

सर्वसौमनस्य की भावना इत्यादि मंत्रों की वैदिक साहित्य का अपूर्व उद्घोष है क्योंकि व्यक्ति के जीवन में यदि सौमनस्य की भावना आ जाती है तो अनुशासित होकर वह जीवन के प्रत्येक पक्ष में सौमनस्य की स्थापना में प्रवर्तित होता है।

आज के युग में व्यक्ति का जीवन इतना बिखरा हुआ है कि उसे अपने लिए अपने परिवार के लिए समय नहीं है, देश व राष्ट्र तो बहुत पीछे रह जाते है। एकल परिवार एवं टूटते बिखरते घरों की समस्याएँ वैदिक उपदेशों रूपी सद्भावना से समाप्त हो सकती है। हम तनिक दृष्टिपात करें।

सामाजिक सौमनस्य

किसी भी सभ्यता एवं संस्कृति का प्रतिफलित रूप उसका समाज होता है। समाज में एक सुदृढ़ व्यवस्था होनी अनिवार्य है ताकि सभी कार्य निर्विघ्न चल सके। इसके लिए सौमनस्य की भावना उसकी उद्घोषणा तथा क्रियान्वयन तीनों रूपों का होना आवश्यक है।

सहृदयता

संमानो मन्त्रः समिति समानी[i] -

सामूहिक चेष्टाएँ, सामूहिक अवधारणाएँ किसी भी समाज की प्राणभूता शक्ति है जिससे प्रेरित होकर वह समाज अपने कार्य एवं उद्देश्य में सफल हो सकती है।

समानीप्रपा सह वोऽन्न भागः।

''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की वैदिक सर्वव्यापी उद्घोषणा प्रशंसनीय है। ईशावस्योपनिषद भी इसी बात को पुष्ट करता है -

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्वमन्नेवानुपश्यति सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।[ii]
सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे भवन्तु निरामयाः एवं 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे''

सर्वत्र समाज में सौमनस्य की ही अवधारणा का प्रचार-प्रसार करती हैं।

वयं राष्ट्रे जागृयाम् पुरोहिताः[iii]; वयं स्याम पतयो रयिणाम् प्रत्येक उद्घोषणा में सामाजिक सौमनस्य झलकता है। आज व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग होने पर भी समाज को भूलकर स्वार्थ सम्पादन में ही लगा है ऐसे में सामाजिक क्रियाकलाप तथा स्वस्तिवाचन सामूहिक स्तर पर किया जाए तो सौहार्द की भावना की वृद्धि होती है।

नारी की स्थिति द्वारा सामाजिक सौमनस्य

नारी सम्मान द्वारा वैदिक युग में सामाजिक सौमनस्य किया गया। नारी विधाता की वह अनुपम कृति है जो भूत को वर्तमान से जोड़ती हुई भविष्य की ओर अग्रसर कर देती है। वैदिक युग में नारी को सम्माननीय स्थान प्राप्त था तथा सामाजिक सौमनस्य की धुरी स्वरूपा नारी को सर्वत्र सम्मान एवं आशीर्वाद से सुसज्जित किया गया।

संगच्छमाने युवती समन्ते स्वासारमाज पित्रोरपस्थे[i],
ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्[ii]
साम्राज्ञी श्वसुरे भव ननान्दरि साम्राज्ञी भव, साम्राज्ञी अधिदेवेषु ।[iii]

सामाजिक सौमनस्य की प्रतीक नारी को यथोचित सम्मान दिया गया था। वह पुरुष अयज्ञिय घोषित कर दिया गया जो ''अपत्नीक'' था -

अयज्ञियो व ह एष योऽपत्नीकः।

सम्पूर्ण क्रियाकलाप, सम्पूर्ण अवधारणाएँ, सम्पूर्ण विकल्पनाएँ नारी को आधार मानकर की जाती थी। सामाजिक समानता एवं सौमनस्य का सबसे बड़ा उदाहरण है वैदिक ऋषिकाओं की प्राप्ति। वेद में, घोषा, अपाला, इड़ा, गोपा आदि अनेकानेक ऋषिकाओं के दर्शन होते हैं। कहीं भी शिक्षादीक्षा में, शास्त्रार्थ चर्चा में यहाँ तक की युद्धकला सीखने पर भी प्रतिबन्ध नहीं था। सामाजिक समरसता एवं सौमनस्य की भावना से ओतप्रोत स्त्री-पुरुष मिलकर कार्य करते थे। जिससे गृहस्थ वातावरण, बाहर का वातावरण और भी सांमजस्यपूर्ण हो जाता था।

दैविक सौमनस्य

वैदिक देवताओं में भेद में अभेद एवं अभेद में भेद दिखाते हुए भी सौमनस्य की अवधारणा की गई है। देवत्व की महिमा मंडित सभी देवता मनुष्यों को सौमनस्य का संदेश प्रदान करते हैं।

वैदिक ऋषि के मत में ऋग्वेद में स्पष्ट किया गया कि एक ही परमसत्ता को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, यम मातरिवा नामों से पूजित किया जाता है -

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यउ स सुपर्णो गरुत्माने।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

इसी प्रकार यजुर्वेद में स्पष्ट किया गया कि उसी विश्वात्मत्त्व को अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्मा, आपः और प्रजापति नामों से पूजित किया जाता है -

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताः आपः स प्रजापतिः[i] देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीवति[ii]

परमात्मा ही इस सुन्दर संसार का रचयिता एवं स्रष्टा है, यह संसार उसकी रचना है। ईश्वरत्व की अवधारणा को ही स्पष्ट करते हुए वेद में उसे कहीं "सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्" तथा कहीं कहीं "विश्वतश्चक्षु विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वस्तस्पात्"[iii]कह कर पुकारा गया है।

ईश्वर के इस अनादि अनन्त रूप एवं रचना को देखकर वेद में उसके धरती, आकाश एवं समस्त लोकव्यवहारों का आधार स्तम्भ सिद्ध किया है। समस्त लोक-व्यवहार एवं सर्वत्र एक ही परमात्मा को सृष्टि का स्रष्टा, देवों का महादेव एकल ब्रह्माण्ड का शासक एवं राजा बताया गया है। ईश्वर वह अधिष्ठिता है जो सर्वप्राणियों के हितार्थ कार्य करता है -

द्यावाभूमी जन्मन् देव एक[iv]
महित्वैक इंद्राजा जगतो बभूव[v]
भूवस्य जातः पतिरेकः आसीत्[vi]
यो देवानां नामधा एक एव[vii] - कह कर पुकारा गया है।

यह ईश्वर को निराकार एवं रूपरहित भी कई स्थलों पर वर्णित किया गया**है -**

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः[viii]

प्राकृतिक सौमनस्य

वैदिक युग में पगे पगे पर्यावरणदृष्ट्या भी सौमनस्य दृष्टिगत होता है क्योंकि सामूहिक दृष्ट्या सर्वजन कल्याण की भावना ही सर्वत्र प्रसारित होती है। समस्त वनस्पतियाँ, सभी औषधियाँ निस्वार्थ भाव से शान्त होकर मानवमात्र के कल्याण हेतु फल दें ऐसी प्रार्थना प्रकृतिगत सौमनस्य को स्पष्ट करती है - ***द्यौः शान्तिः अन्तरिक्ष शान्तिः पृथ्वी शान्ति*** अथवा ***माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः*** की संकल्पना सौमनस्य की पृष्ठभूमि है, उत्स भाव है।

ॐ भूः भुवः स्वः तत्सवितुरः वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो नः प्रचोदया[i] ऊँ विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव यद् भद्रं तन्न आ सुव

सौमनस्य की भावना का उत्कर्ष उस समय देखने को प्राप्त होता है जब वाणी स्वयं को सबकी धात्री बताती हुई राष्ट्र की संगमनी बताती है।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूमयं चिकितुषी यज्ञियानाम् देवभूमि भारतभूमि की अखण्डता, सार्वभौमिकता एवं राष्ट्रप्रेम की परिचायक अनेक वैदिक उद्घोषणाएँ समन्वयवाद, सौमनस्यवाद एवं विचारों की पर्यावरणीय समानता एवं एकता को द्योतित करती है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में प्रकृति अपने उत्कर्ष को द्योतित करती है। *द्वासुर्णा सयुजा सखाया* द्वारा एकत्व की उद्भावना को प्रबोधित किया गया है।

मन, कर्म एवं वचन का सौमनस्य

वैदिक समाज वह समाज था जहाँ व्यक्तियों के मन भी एक थे *यत्र धीराः मनसा वाचमकृत* मन एवं वाणी का सौमनस्य रहता था तथा कर्म भी उसी के अनुसार किए जाते थे। एक सामूहिक निर्णय होता था - ***सक्तुवि तितउना पनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमकृत अत्र सखायो सख्यानि जायन्ते ..... संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्***

अथर्ववेद के अन्य सूक्त में मन का मन से संयोजन का वर्णन है। सरस्वती नदी की उद्घोषणा में चित्त को आकर्षित करने तथा उचित मार्ग पर चलने का वर्णन है।

अहं गृभ्णानि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत। मम वंशस्य हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्माय च॥[1]

अध्ययन का उद्देश्य

वैदिक युग में व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक स्तर पर सौमनस्य द्योतित किया गया है। इस परिप्रेक्ष्य में वैयक्तिक, सामाजिक, वैचारिक, आध्यात्मिक, दैविक, प्राकृतिक, पर्यावरणीय इत्यादि पक्षों पर वर्तमान लेख में विचार प्रस्तुत किया जाएगा।

निष्कर्ष

अतः स्पष्ट है कि वैदिक काल में मानव के जीवन में सौमनस्य का महत्त्व एवं क्रियान्वयन पूर्ण रूप से होता था। जीवन के प्रत्येक पक्ष एवं प्रत्येक क्षण में सौमनस्य की अवधारणा विविध आयाम एवं

प्रकारों के साथ दृष्टिगत होती थी। उस काल के सभी क्रियाकलाप स्वार्थराहित्य एवं परस्पर मेलजोल की भावना से ओतप्रोत थे।

आज के वर्तमान समय में टूटते घर, बिखरते सपने, सिसकती मानवता आतंकवाद, वर्णवाद, जातिवाद जैसी अनेकों समस्याएँ मुखबाए मनुष्य एवं मनुष्यता को निगलने हेतु तैयार बैठी है। मानव ही मानव का शत्रु बना बैठा है। छोटे से आर्थिक लाभ की प्राप्ति हेतु एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को निगलना चाहता है।

कोई सहिष्णुता जैसी वस्तु जीवन में रह ही नहीं गई। चाहे रोड रेज हो या नौकरी या उच्चपद प्राप्त करने की लालसा। प्रत्येक मनुष्य दूसरे को हानि पहुँचाकर सीढ़ी पर चढ़ना चाहता है। ऐसे में हमारी सभी वैदिक अवधारणाएँ एक सूत्र में हमें पिरोकर, हमारे घर परिवार, देश एवं विश्व को एक करने का संकल्प लेकर "कृण्वन्तो विश्वार्यम्" के रूप में आगे बढ़ती हुई सम्पूर्ण विश्व को वह संबल प्रदान करती है कि मानवता एवं मानवजाति एक स्वर में उसकी आराधना करते है तथा वैदिक शक्ति की उद्घोषणा सर्वत्र प्रसारित होती है।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥[2]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अथर्व 3/30/2*
2. *अथर्व 3/30/3*
3. *अथर्व 3/30/1*
4. *ईशावस्योपनिषद 6*
5. *अथर्व. 13/1/15*
6. *ऋक् 19/195/5*
7. *अथर्व. 19/9/18*
8. *ऋक् 18/185/46*
9. *यजुर्. 32/1*
10. *अथर्व. 10/8/82*
11. *ऋक् 10/81/3, यजुर्. 17/19 अथर्व. 13/2/25*
12. *ऋक् 10/81/3, यजुर्. 17/19, अथर्व. 13/2/26*
13. *ऋक् 4/2/21*
14. *ऋक् 4/2/7*
15. *ऋक् 10/82/3*
16. *यजुर्. 32/3*
17. *यजुर्. 10/3*
18. *अथर्व 6/94*
19. *देवी सूक्त 5*